*विनियमन और वित्तीय स्थिरता**

एन. एस. विश्वनाथन

मर्चेन्ट चैम्बर ऑफ कॉमर्स एण्ड इन्डस्ट्री के प्रेसिडेन्ट श्री हेमन्त बांगड़, यूनाइटेट बैंक ऑफ इंडिया के एमडी और सीईओ श्री पवन बजाज, मंच पर उपस्थित अन्य गणमान्य सज्जनो, प्रिन्ट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के साथियो, देवियो और सज्जनो। इस गरिमामयी सभा के समक्ष ''विनियमन और वित्तीय स्थिरता'' के बारे में अपने विचार रखते हुए मुझे हार्दिक प्रसन्नता हो रही है।

वित्तीय प्रणाली और बाज़ारों को उचित विनियमों के अंतर्गत काम करना ही चाहिए। इसीलिए वित्तीय क्षेत्र के विवेकपूर्ण विनियमन और समष्टि आर्थिक नीतियों में स्थिरता का प्रावधान होना चाहिए। कुछ दिशाओं से यह चिंता भी की गई कि वैश्विक मानक स्थापित करने वाले निकायों ने बहुत कठोर विनियमन आरंभ कर दिए हैं। हमें यह समझना ही होगा कि वित्तीय संकट की बहुत कीमत चुकानी पड़ सकती है। आप सभी जानते हैं कि कुछ भागों में विश्व अभी लगभग एक दशक बाद भी संकट के प्रभावों को महसूस कर रहा है।

इसलिए जब वित्तीय स्थिरता की बात आती है तो यह कहावत पूरी तरह लागू होती है कि सौ दवाओं से एक परहेज भला।

वैश्विक संकट के बाद वित्तीय स्थिरता को आर्थिक नीति और विनियमन के सेन्टर स्टेज पर ला खड़ा किया गया। इस संकट ने प्रचुरता से यह स्पष्ट कर दिया है कि प्रत्येक वित्तीय संस्था की वित्तीय प्रबलता प्रणालीगत क्षमता में कोई अभिवृद्धि नहीं करती है। जब संकट सामने आया तो यह साफ दिखाई दिया कि लगभग प्रत्येक वित्तीय संस्था ने उल्लेखनीय पूँजी पर्याप्तता की रिपोर्ट दी। इससे नीति निर्माताओं को यह सोचना पड़ा कि व्यष्टिगत विवेकपूर्ण विनियम किसी वित्तीय प्रतिष्ठान की मजबूती को निर्धारित करने में मदद करते हैं, लेकिन इनके साथ पर्याप्त समष्टिगत विवेकपूर्ण विनियम और प्रणाली विरुद्ध जोखिम उपाय किए जाने चाहिए अन्यथा प्रणालीगत स्थिरता को जोखिम हो सकता है।

जैसा कि डॉ. सुब्बाराव ने अपनी पुस्तक 'Who Moved by Interest Rate' में लिखा है कि वित्तीय स्थिरता को परिभाषित कर पाना कठिन है, लेकिन जब वित्तीय अस्थिरता होती है तो कोई भी इस पर विचार कर सकता है। वित्तीय स्थिरता को विभिन्न चैनलों से प्रभावित किया जा सकता है। यह वित्तीय संस्थागत चैनल से हो सकता है, बाजार, फोरेक्स और यहाँ तक कि व्यापारिक चैनलों के माध्यम से भी हो सकता है, खासकर तब जब कि विश्व अर्थव्यवस्था अधिकाधिक वैश्वीकृत और अन्त: संयुक्त होती जा रही है।

वित्तीय प्रणाली को मात्र व्यष्टि विवेकपूर्ण विनियमों से बदलकर समष्टि विवेकपूर्ण विनियमों की तरफ ले जाने की पद्धति के लिए एक ऐसे मंच की जरुरत है जिस पर सभी क्षेत्रीय नियामकों और आर्थिक नीति निर्माताओं को एक साथ लाया जा सके। यह अनिवार्य है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि जिन नियामक और आर्थिक नीतियों का अनुसरण किया जाता है वे वित्तीय संस्थाओं की सिर्फ आघात सहने की क्षमता सुनिश्चित करने के लिए ही अशंकित नहीं है बल्कि इनमें वित्तीय स्थिरता की चिन्ताओं से निपटने की समग्रता भी है। संयुक्त राज्य में डॉड फ्रैन्क एक्ट ने फाइनान्शियल सेक्टर ओवरसाइट कमिटी (FSOC) का गठन एकछत्र निकाय के रुप में किया। वित्तीय अस्थिरता की तरफ ले जा सकने वाले विभिन्न चैनलों को स्वीकार करते हुए और इस तथ्य को मानते हुए कि वित्तीय प्रणाली के विभिन्न हिस्सों का विनियमन अलग-अलग नियामकों द्वारा किया जाता है - भारत सरकार ने वित्त मंत्री की अध्यक्षता में वित्तीय स्थिरता विकास परिषद (एफएसडीसी) गठित की है जिसमें सरकार के वरिष्ठ पदाधिकारियों के अलावा वित्तीय क्षेत्र के अन्य नियामकों को सदस्य के तौर पर लिया गया है। आरबीआई के गवर्नर की अध्यक्षता और वित्तीय क्षेत्र के अन्य नियामकों के चेयरमैन की सदस्यता वाली एफएसडीसी उप समिति की बैठकें बार-बार होती हैं और यह अपनी रिपोर्ट एफएसडीसी को प्रस्तुत करती है। एफएसडीसी की उपसमिति और एफएसडीसी द्वारा अर्थव्यवस्था और वित्तीय प्रणाली की गतिविधियों, विभिन्न चैनलों से वित्तीय स्थिरता को जोखिम की समीक्षा की जाती है और स्थिति से निपटने के लिए यथोचित अपेक्षित उपाय किए जाते हैं। एफएसडीसी उपसमिति को सचिवालय सेवाएं आरबीआई द्वारा दी जाती हैं और वित्तीय स्थिरता रिपोर्ट का छमाही प्रकाशन किया जाता है। इस वित्तीय स्थिरता रिपोर्ट में वित्तीय प्रणाली की वर्तमान स्थिति, वित्तीय स्थिरता को प्रभावित कर सकने वाले संभावित स्रोतों के अन्त:सम्पर्कों की सीमा का विश्लेषण किया जाता है। वित्तीय प्रणाली की

* यह भाषण श्री एन.एस. विश्वनाथन, उप गवर्नर, भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा 13 अक्टूबर 2017 को कोलकाता में आयोजित मर्चेंट चैम्बर ऑफ कॉमर्स एंड इंडस्ट्री के विशेष सत्र में दिया गया था।

कमजोरियों को समझने के लिए सर्वांगीण जोखिम आकलन बहुत अहम है।

इसका आशय है कि वित्तीय संस्थानों की मजबूती सुनिश्चित करने के अलावा यह भी अनिवार्य है कि विभिन्न आर्थिक आघातों के प्रति प्रणाली की सहनशीलता का भी आकलन किया जाए। इसीलिए वैश्विक रुप से केन्द्रीय बैंकों ने स्वीकार्य लेकिन नाजुक आर्थिक स्थितियों में समूची प्रणाली के दबाव-परीक्षण आरंभ कर दिए है। आरबीआई इस प्रकार के दबाव परीक्षण करता है और इनके परिणामों का प्रकाशन वित्तीय स्थिरता रिपोर्ट में किया जाता है। रिज़र्व बैंक द्वारा अन्य बैंकों से अपेक्षा की जाती है कि वे भी दबाव परीक्षण करें और परिणामों को अपनी आंतरिक पूँजी आकलन में प्रयुक्त करें।

मैं अपनी बात यह कहते हुए शुरु करता हूँ कि यह जरूरी नहीं है कि मज़बूत वित्तीय संस्थाएं वित्तीय स्थिरता की तरफ ले जाएं। वित्तीय स्थिरता के लिए मजबूत और आघात सहन करने वाली वित्तीय संस्थाएं पर्याप्त नहीं होती हैं बल्कि यह तो अनिवार्य शर्त होती है। इसीलिए यह सर्वमान्य है कि समुत्थानशील वित्तीय प्रणाली, अधिक बारीकी से कहें तो बैंकिंग प्रणाली, वित्तीय स्थिरता के लिए महत्वपूर्ण होती हैं और ये अन्य चैनलों से पैदा होने वाली वित्तीय अस्थिरता के विरुद्ध चहारदीवारी का काम करती हैं। इसी तरह वर्ष 2007-08 में हुए वित्तीय संकट जैसे संकट से बचाव के लिए अन्य प्रयासों के अलावा जी-20 ने बासेल कमेटी फॉर बैंकिंग सुपरविजन (बीसीबीएस) को अधिकार दिए कि ऐसा विनियामक फ्रेमवर्क तैयार किया जाए जो बैंकिंग प्रणाली को समुत्थानशील और मजबूत बनाने में मदद करे। इस संकट के कारण वैश्विक वित्तीय संरचना के साथ-साथ विनियम बनाने के लिए संस्थागत संरचना में भी बदलाव की जरुरत पड़ी। इससे जी-20 देशों को समाहित करने के लिए बीसीबीएस का विस्तार किया गया और इसमें भारत को भी बीसीबीएस का सदस्य बनाया गया और वित्तीय स्थिरता बोर्ड स्थापित हुआ। बेशक, जैसा कि डॉ.सुब्बाराव ने अपनी प्रसिद्ध किताब में उल्लेख किया है, भारत और अन्य ईएमई देशों को सामान्यतया वोट का अधिकार तो मिलता है लेकिन आवाज उठाने का नहीं। लेकिन धीरे-धीरे यह बदल रहा है और कुछ हद तक ईएमई देशों की बात को भी सुना जा रहा है। जी-20 समूह द्वारा प्रदत्त अधिकारों के प्रतिसाद में बीसीबीएस ने नए विनियम तैयार किए जिन्हें आमतौर पर बासेल-III विनियमावली कहा जाता है।

बासेल-III नियमावली द्वारा विनियामक फ्रेमवर्क में किए गए परिवर्तनों के बुनियादी तत्त्वों को समझने के लिए उन आधारभूत मुद्दों की रुपरेखा देखना उपयोगी होगा, जो उन्नत अर्थव्यवस्थाओं में संकट के दौरान वित्तीय प्रणाली में पाई गईं।

(ए) बैंकिंग प्रणाली की उच्च लीवरेज पर उच्च सीआरएआर का मुखौटा लगा दिया गया। उच्च दरों वाली प्रतिभूतिकृत लिखतों में निम्न कोटि की आस्तियों को लपेटकर बैंकों ने उच्च सीआरएआर दर्शाई, जबकि वे अति लीवरेज स्थिति में बने रहे।

(बी) अपनी आस्तियों के निधीयन और पुनर्वित्तीयन के लिए बाजार से उधार लेने पर अत्यधिक निर्भरता; अन्तर्निहित आस्तियों में चूक होने के कारण बंधक समर्थित प्रतिभूतियां जब डाउनग्रेड हुईं तो नकदी की आपूर्ति समाप्त हो गई।

(सी) अनुषंगियों (एक प्रकार से शैडो बैंकिंग प्रतिष्ठान) का प्रयोग करते हुए ऐसे क्रियाकलाप करना जो बैंक के भीतर से किए जाते तो अधिक विनियमित रहते, इस प्रकार विनियामकीय क्रय-विक्रय का सृजन हुआ।

(डी) पूंजी की हानि-अवशोषक-क्षमता कमजोर रही, यह देखते हुए कि पूँजी का न्यूनतम 50 प्रतिशत हिस्सा ही हानि अवशोषक प्रकृति का नहीं हो सकता है (टीयर-II)।

(ई) कभी विफल नहीं हो सकने वाले बड़े बैंकों को लोक-निधि में से बेल-आउट की जरुरत पड़ी। इसलिए बहुत बड़े और अन्त: संयोजित प्रतिष्ठान भी महंगे पड़ जाते हैं।

(एफ) क्रेडिट रेटिंग पर निर्भरता से संभारित अव-पूंजीकरण हुआ।

(जी) क्रेडिट जोखिम हेतु अपनी पूंजी अपेक्षाओं के निर्धारण हेतु बहुत से बैंकों ने आंतरिक रेटिंग आधारित (आईआरबी) प्रणाली अपनाई और आईआरबी तो मॉडल आधारित होती है। इसलिए सम्पूर्ण तुलन पत्र ही मॉडल जोखिम के प्रति अनावृत हुआ।

इस पृष्ठ भूमि में अब हम बासेल-II में किए गए प्रमुख बदलावों को देखते हैं:-

1. यह अनिवार्य किया जाए कि पूँजी की कोटि और मात्रा में सुधार हो ताकि बैंकों और बैंकिंग प्रणाली को उच्चतर हानि सहन करने लायक बनाया जा सके जो संभावित जोखिमों के आघातों को झेल सके। इसलिए विनियामक पूँजी व्यवस्था में तीन बुनियादी बदलाव किए गए:-

   (ए) यह निर्धारित किया गया कि 8 प्रतिशत सीआरएआर में से न्यूनतम 4.5 प्रतिशत सामान्य इक्विटी टीयर-I सम्पूर्ण हानि अवशोषक क्षमता वाली होगी।

   (बी) पूंजी संरक्षण हेतु 2.5 प्रतिशत बफर के अलावा प्रतिचक्रीय पूंजी हेतु 2.5 प्रतिशत बफर के रुप में दो अतिरिक्त बफर निर्धारित किए गए। अर्जन वितरण पर प्रतिबंध रखते हुए संकट के समय पूंजी संरक्षण बफर को रन-डाउन किया जा सकेगा।

   (सी) बैंक को टीयर-I (एटी-I) के अतिरिक्त बॉन्ड जारी करने की अनुमति दी गई लेकिन हानि अवशोषण के प्रबल फीचरों सहित।

2. वैश्विक और स्वदेशी स्तरों पर इतने बड़े कि विफल नहीं होंगे - प्रकार के बैंकों की पहचान हेतु एक फ्रेमवर्क तैयार किया गया। जीएसआईबी (वैश्विक स्तर पर सर्वांगीण रुप से महत्त्वपूर्ण बैंकों और डीएसआईबी (स्वदेशी स्तर सर्वांगीण रुप से महत्वपूर्ण बैंकों) से अतिरिक्त पूँजी के अलग-अलग स्तर रखना अपेक्षित है, ताकि यदि वे विफल होते है तो वे स्वयं को उबारने के लिए लोक-निधियों का प्रयोग करने से बच सकें और उनके तुलनपत्रों में अत्यधिक बढ़ोत्तरी न हो। जीएसआईबी से यह भी अपेक्षित रहा कि वे टीएलएसी (कुल हानि अवशोषक क्षमता) लिखत जारी करें, जिन्हें जरुरत पड़ने पर इक्विटी में बदला जा सके।

3. जैसा कि मैं पहले बता चुका हूँ संकट के समय बैंकिंग प्रणाली के कई फीचरों में से एक यह भी था कि निधियों के लिए बाजार से उधार लेने पर अत्यधिक निर्भरता रही। संकट का पहला ट्रिगर यह था कि इन बैंकों में से एक अपनी देयताओं के लिए वित्त जुटाने में अक्षम रहा क्योंकि अंतर्निहित आस्तियां डाउनग्रेड हो गईं। हैरानी की बात यह है कि उस समय आस्ति-देयता प्रबंधन प्रणाली रखने के अलावा वैश्विक रुप से चलनिधि का कोई मानक नहीं था। बीसीबीएस ने महसूस किया कि नकदी का अभाव किसी भी बैंक को खोखला कर सकता है और उसे दिवालिएपन की तरफ धकेल सकता है। इसीलिए बासेल-III सुधारों के एक भाग के तौर पर चलनिधि मानकों का निर्धारण किया गया। ये सुधार थे - चलनिधि कवरेज अनुपात (एलसीआर) और निवल सुस्थिर निधीयन अनुपात (एनएसएफआर)। बैंकों के पास अपनी देयताओं के संबंध में होने वाली मांग को पूरा करने और दबावग्रस्तता की स्थितियों में 30 दिन की अवधि के लिए उच्च कोटि की चलनिधि पर्याप्त मात्रा में है, एलसीआर से यह सुनिश्चित हो जाता है। एनएसएफआर में अपेक्षित है कि बैंकों के पास एक वर्ष की समयावधि के लिए अपनी आस्तियों और अपने क्रियाकलापों के चलनिधि लक्षणों के आधार पर स्थायी वित्तीयन की न्यूनतम रकम है। इससे निधीयन और रोलओवर के जोखिम कम हो जाएंगे। हमें हमारी एसआरआर अपेक्षाओं के प्रति आभारी होना चाहिए जिनके चलते एलसीआर अपेक्षाओं को पूरा करने में भारतीय बैंकों को कोई कठिनाई नहीं हुई।

4. आस्ति पक्ष में उच्च दर वाली लिखतों की गहनता के कारण बैंक उच्च सीआरएआर के साथ अपनी उच्च लीवरेज को छिपाने में सक्षम हुए। आस्तियों की कोटि डाउनग्रेड होते ही पूँजी की अपर्याप्तता सामने आ गई। इस संभावना के निवारण की दृष्टि से बासेल समिति ने लीवरेज अनुपात भी निर्धारित कर दिया। इसका आशय यह हुआ कि भले ही बैंक की आस्तियों के लिए शून्य जोखिम भार दिया गया हो, अब उस पर कुछ निषेध रहेगा, जबकि एक मात्र सीआरएआर पद्धति में इसने अपरिमित लीवरेज की क्षमता दे दी होती।

5. प्रतिभूतिकरण पर विभिन्न विनियामकीय बदलाव किए गए हैं। इन परिवर्तनों में सरल, पारदर्शी और मानकीकृत (एसटीएस) प्रतिभूतिकरण के लिए फ्रेमवर्क निर्धारित करना शामिल है। एसटीएस के

अनुरुप नहीं होने वाले प्रतिभूतिकरण सौदे के लिए उच्चतर पूँजी निर्धारित है, ताकि बैंक के तुलनपत्र से निकलने वाली असत्य बिक्री को रोका जा सके और इस प्रकार के लेन देन हेतु पूँजी अपेक्षाओं को मजबूत किया जा सके।

6. बासेल समिति भी यथासंभव पूँजी अपेक्षा निर्धारित करने के लिए आंतरिक मॉडल आधारित पद्धति के प्रयोग को समाप्त करने की दिशा में बढ़ रही है। यह तीन प्रकार से किया जा रहा है (क) विभिन्न प्रकार के एक्सपोजरों के लिए आईआरबी के प्रयोग को निषिद्ध करना (ख) मानकीकृत पद्धति को मजबूत करना और (ग) जहाँ आईआरबी का प्रयोग होता हो, वहाँ विनियामक आधार निर्धारित करना, ताकि इस मॉडल के प्रयोग से जोखिम के कारण कम पूंजीकरण की संभावना कम-से-कम हो।

इसके अलावा बाजार जोखिम सहित अन्य बदलाव भी हुए, जिनके लिए मैं समझता हूँ कि मुझे विस्तार से बताने की जरुरत है।

सिर्फ प्रबल विनियमों के माध्यम से वित्तीय स्थिरता प्राप्त नहीं की जा सकती। इनके साथ प्रभावी पर्यवेक्षण भी होना चाहिए। संकट पूर्व के दिनों में बहुत से अधिकार क्षेत्रों में लाइट-टच पर्यवेक्षी और विनियमन पद्धति प्रचलन में थी। इस प्रकार विनियमन अधिकतर, अनुपालन या स्पष्ट करें और पर्यवेक्षण कम गहन प्रकार के थे। लाइट टच विनियामक और पर्यवेक्षी प्रकार की ये पद्धतियॉ बैंकिंग प्रणाली के एक कारण के रुप में भी देखी गईं। वैश्विक संकट ने यह सब बदल दिया और अधिक 'हैन्ड्स ऑन' विनियमन तथा गहन पर्यवेक्षण की तरफ बढ़ना जारी है। लेकिन भारत में रिज़र्व बैंक विनियमों और पर्यवेक्षण के लिए काफी पहले से 'हैन्ड्स ऑन' ही है।

7. हमने भारत में बासेल-III विनयमों को अपनाया है और वैश्विक समय सारणी के अनुक्रम में बैंकों से अपेक्षित है कि 31 मार्च 2019 तक पूरी तरह से बासेल-III को अंगीकार कर लें। जब कभी भी हम भारत में बैंकिंग के बारे में बात करते हैं तो ऐसा विचार व्यक्त किया जाता है कि हम अपेक्षित वैश्विक मानदंडों की तुलना में कठोर मानदंड लागू करते हैं। इस धारणा की पुष्टि स्वरूप जो तर्क दिए जाते हैं, उनमें बहुधा इस बात का उल्लेख किया जाता है कि बासेल नियमावली में निर्दिष्ट 8 प्रतिशत सीआरएआर की तुलना में 9 प्रतिशत सीआरएआर का निर्धारण किया गया है। यहाँ मुझे यह स्पष्ट करना होगा जैसा कि किसी एक वर्किंग पेपर[1] में विस्तार से बताया भी गया है कि वास्तव में ऐसा नहीं है। बुनियादी तौर पर अन्य कारकों के साथ यह एक प्रतिशत अधिक सीआरएआर विनियामक पूँजी को भारतीय हालात के अनुसार कैलिब्रेट करने हेतु है, जो इस बारे में समसमान रुप से रेटेड अन्तरराष्ट्रीय जोखिमों से अलग रखते हुए एक विशेष क्रेडिट रेटिंग पर आधारित जोखिमों के लक्षणों के लिए किए जाते हैं। मैं यहाँ उल्लेख करना चाहूँगा कि विनियामक पूँजी अनिवार्यतया अनपेक्षित हानि की भरपाई करने के लिए होती है। इसलिए ऐसा कैलिब्रेशन अपेक्षित है। जिन्हें इस बारे में रुचि है उनके लिए मैं कहना चाहूँगा कि आप आलेख-I अवश्य पढ़िए जिसका मैं उल्लेख कर चुका हूँ। संयोगवश 4.5 प्रतिशत के मुकाबले 5.5 प्रतिशत का उच्चतर सीईटी-I अनुपात एक अन्य बहुधा उल्लेख किया जाने वाला 'विचलन' है जो कि 9 प्रतिशत सीआरएआर का ही एक डेरिवेटिव है।

8. एक अन्य क्षेत्र में भी हमारे विनियमों को मानकों की तुलना में कठिन बताया जाता है, और वह है एसएलआर और एलसीआर दोनों को बनाए रखना। आप जानते ही होंगे कि हमने क्रमिक रुप से एसएलआर को कम किया है और अनुमति दी है कि एसएलआर के 11 प्रतिशत की गणना एलसीआर के रुप में कर ली जाए। इस प्रकार इसका प्रभाव मृदुल हो जाएगा। इसके अलावा हमें यह कार्य क्रमिक रुप से करना होगा, खासकर इसे दृष्टिगत रखते हुए कि यदि एसएलआर से प्रतिलाभ को अचानक ही कम कर दिया गया तो सरकारी प्रतिभूतियों में ऊर्ध्वगामी संचलन के कारण होने वाली अस्थिरता से बचा जा सके।

[1] आरबीआई वर्किंग पेपर श्रृंखला 2017 - टिस्क-वेटिंग अंडर स्टैडर्डाइन्ड एप्रोच ऑफ कंप्यूटेशन ऑफ कैपिटल फॉर क्रेडिट टिस्क इन बासेल फ्रेमवर्क - एन एनालिसिस ऑफ डिफॉल्ट एक्सपीरियंस ऑफ क्रेडिट टेटिंग एजेंसिज इन इंडिया।

9. हमने बैंक से अपेक्षा की है कि लीवरेज अनुपात को लागू किया जाए और उन्हें यह संकेत दिया है कि हम 4.5 के अनुपात पर उनकी निगरानी करेंगे। इसमें अधिक विचार इस तथ्य का है कि वैश्विक मानकों की दृष्टि से भी ओवर-लीवरेज होने से पहले ही बैंक सुधारात्मक कार्रवाई करने में सक्षम रहें और यह भी कि वर्तमान में समूची प्रणाली में व्याप्त औसत लीवरेज अनुपात से आगे नहीं बढ़ने का आदेश बैंकों को दिया जाए।

10. कारोबार के लिए यह स्वाभाविक है कि प्रबल रुप से विनियमित परिवेश से कम विनियमित परिवेश की तरफ बढ़ा जाए। यही कारण है कि बैंकिंग प्रणाली अधिक विनियमित रही जबकि फर्में कम विनियमित परिवेश की तरफ बढ़ीं। जब कम विनियमित अथवा अविनियमित परिवेश में वित्तीय मध्यस्थता होती है, यहाँ तक कि बैंक भी ऐसा करने के लिए अनुषंगी मॉडल को खास तौर पर अपनाते हैं, तो वित्तीय प्रणाली पर उल्लेखनीय प्रभाव पड़ता है। शैडो बैंकिंग प्रतिष्ठानों को ऐसे वित्तीय मध्यस्थों के रूप में परिभाषित किया गया है जो विनियामक निगरानी के बिना क्रेडिट सृजन सुविधा देने में लगे होते हैं। इसीलिए वैश्विक स्तर पर बैंकों के लिए समष्टि और व्यष्टि विवेकपूर्ण विनियमन को सशक्त बनाने के उपायों के साथ शैडो बैंकिंग प्रणाली पर बेहतर नियंत्रण के प्रयास भी शामिल किए गए। प्रयास इस दिशा में भी हुए कि शैडो बैंकिंग प्रतिष्ठानों की मैपिंग करके एक विनियामक व्यवस्था कायम की जाए। रिज़र्व बैंक भी वित्तीय स्थिरता बोर्ड द्वारा संचालित कार्यों में शामिल होता है और उसे आवश्यक जानकारी प्रदान करता है। भारतीय संदर्भ में गैर-बैंकिंग वित्तीय कम्पनियाँ वित्तीय मध्यस्थता सेवाएं प्रदान करती हैं तथा न्यूनतम पूँजी और ऋण अपचार पर ध्यान देने के लिए इन पर काफी सख्ती से नियंत्रिण किया जाता है।

11. यह भी देखा गया कि संकट के दौरान लेखांकन फ्रेमवर्क, खासकर वित्तीय विवरणी में दिखाए जाने वाले वित्तीय लिखतों के उचित मूल्य के आंकलन में, वित्तीय संस्थानो की सही और उचित छवि प्रकट नहीं हुई। इसलिए तुलन-पत्र और लाभ हानि लेखा दर्ज करने हेतु वैश्विक स्तर पर अंतरराष्ट्रीय वित्तीय रिपोर्टिंग मानकों (आईएफआरएस) को अपनाने के प्रयास हो रहे हैं। भारत में भी हम बैंकों के लिए लेखांकन पद्धति के रूप में भारतीय लेखांकन मानकों को अपनाने की तरफ बढ रहे हैं और हम सभी हिस्सेदारों से आगामी संवाद कर रहे हैं।

12. हाल ही में साइबर जोखिमों के प्रति वित्तीय संस्थानों की कमजोरी का खतरा निहायत ही बढ गया है। विगत में प्रौद्योगिकी का प्रयोग बैंकों में बढ़ने के परिणामस्वरुप ऐसा हुआ। साइबर जोखिमों से सहज ही प्रभावित होने से न केवल वित्तीय संस्थान खतरे में पड़ जाते हैं, बल्कि साइबर जोखिम निधियों, डाटा की चोरी, आईटी प्रणालियों का नष्ट-भ्रष्ट होना आदि रुपों में होते हैं, जो सामान्य परिचालनों को प्रभावित कर सकते हैं। इसलिए वैश्विक स्तर पर अपर्याप्त साइबर सुरक्षा को वित्तीय स्थिरता के लिए गंभीर खतरे के रुप में अंकित किया गया है। प्रबल साइबर जोखिम प्रबंधन फ्रेमवर्क के महत्त्व को समझते हुए रिज़र्व बैंक ने इस बारे में बैंकों को विस्तृत विनियम जारी किए हैं। रिज़र्व बैंक सूचना प्रौद्योगिक प्रा. लिमिटेड के नाम से भारतीय रिज़र्व बैंक ने अपनी एक आईटी अनुषंगी इकाई स्थापित की है ताकि साइबर जोखिम प्रबंधन के विनियमों को समुचित रूप से लागू करने में सहायता मिल सके और पर्यवेक्षी पद्धति के एक भाग के तौर पर विनियमित प्रतिष्ठानों की आईटी प्रणालियों की गुणवत्ता का आकलन किया जा सके।

13. भारत में यह पाया गया है कि कुल जोखिमों की प्रतिशतता के रूप में एनपीए की मात्रा बड़े खातों में अधिक है। अत्यधिक लीवरेज वाले कारपोरेट सेक्टर से सर्वांगी जोखिम पैदा होते हैं। वैश्विक रुप

से बड़े जोखिमों को काबू में करने के प्रयास हो रहे हैं और हमने भी बड़े जोखिम मानदंडों को वैश्विक मानकों के अनुरूप कर लिया है। इसके अलावा, बैंक तुलन-पत्रों को जोखिम मुक्त करने की दृष्टि से और बड़े कर्जदारों को पूँजी बाजार की तरफ जाने के लिए प्रोत्साहित करने के लिए हमने कतिपय परिस्थितियों में बडे कर्जदारों को उच्चतर जोखिम भारांक दिए हैं।

14. वित्तीय स्थिरता को प्रबल बनाने के लिए मैंने विवेकपूर्ण उपायों के प्रयोग का उल्लेख किया था। आरबीआई ने इन उपायों का प्रयोग तब कर लिया था जब इनका प्रचलन ही नहीं था। बाजार में उठने वाले बुलबुलों से सहज ही प्रभावित हो जाने वाली आस्तियों के लिए एक्सपोजर हेतु उच्चत्तर जोखिम भारांक और उच्चत्तर मानक आस्ति प्रावधानीकरण एक ऐसा ही उदाहरण है। इसलिए हमने पूँजी बाजार एक्सपोजर और वाणिज्यिक भूसम्पदा हेतु उच्चत्तर जोखिम भारांक, हेज रहित विदेशी मुद्रा एक्सपोजर के लिए अतिरिक्त पूँजी, आदि रखे हुए हैं। गिरवी आधारित कर्जों के लिए कर्ज - मूल्य अनुपात (एलटीवी) नामक एक अन्य बृहद् विवेकपूर्ण उपाय का प्रयोग विशेष रुप से किया जाता है।

15. वित्तीय प्रणाली में अन्त: सम्बद्धता के कारण पैदा होने वाले व्यापक जोखिमों से निपटने के लिए भारतीय रिज़र्व बैंक ने कई उपाय किए हैं। इनमें अन्य बातों के साथ-साथ सकल अन्तर-बैंक देयताओं और क्रॉस-होल्डिंग पर विवेकपूर्ण सीमाएं, जटिल क्रियाकलापों और उत्पादों के एक्सपोजर पर प्रतिबंध, वित्तीय संगुटों की निगरानी, उभयनिष्ठ एक्सपोजरों की निगरानी (संवेदनशील क्षेत्र), सेन्ट्रल पार्टियों तथा कारोबारी रिपॉजिटरियों के जरिए ओटीसी लेन-देन में पारदर्शिता बढाना और जोखिम कम करना और गैर बैंकिंग वित्तीय प्रतिष्ठानों के लिए पर्यवेक्षी तथा विनियामक फ्रेमवर्क को मजबूत करना शामिल हैं।

16. जब भी कोई भारतीय बैंकिंग प्रणाली के बारे में बात करता है, तो दबावग्रस्त आस्तियों का मुद्दा सामने आ जाता है। बेशक, भारत में बैंकिंग प्रणाली में खास तौर पर सरकारी क्षेत्र के बैंकों में दबावग्रस्त आस्तियों की समस्या गंभीर चिंता का विषय है। सन 2015-16 में की गयी आस्ति गुणवत्ता समीक्षा से बैंकों के तुलन-पत्रों में दबाव को उचित रुप से पहचानने की क्षमता आई और अब हम इनके लिए पर्याप्त प्रावधान करने की प्रक्रिया में हैं। जैसा कि मेरे साथी डॉ. विरल आचार्य ने अपने एक व्याख्यान[2] में कहा था, बैंक तुलनपत्र की मजबूती और उसकी क्रेडिट संवृद्धि के बीच प्रगाढ़ सह-सम्बन्धों के पुख्ता प्रमाण हैं। निजी क्षेत्र के बैंकों और विदेशी बैंकों की तुलना में सरकारी क्षेत्र के बैंकों की क्रेडिट संवृद्धि में उल्लेखनीय रुप से न्यूनतर संवृद्धि के रुप में सरकारी क्षेत्र के बैंकों के कमजोर तुलन-पत्र का प्रभाव बहुत स्पष्ट है। सरकारी क्षेत्र के बैंकों की पूँजी आधार को मजबूत बनाने के विभिन्न तरीकों का परीक्षण हम कर रहे हैं, ताकि वे अपनी लेंडिंग को बढा सकें और इस प्रकार आर्थिक संवृद्धि में योगदान करें। डॉ. आचार्य ने जिस सह-संबंध का उल्लेख किया है, उसके अलावा मेरा यह भी मानना है कि मजबूत तुलन-पत्र बैंकों को दबावग्रस्त आस्तियों से बेहतर तरीके से निपटने के लायक बनाता है। अन्य कारकों के अलावा पूँजी की अड़चनें बैंकिंग प्रणाली और आमतौर पर अर्थव्यवस्था के लिए बेहतर वैल्यू प्रदान कर सकने वाली सामायिक कारवाई आरंभ करने की बजाय दबाव को समझने अथवा इष्टतम से इतर पुनर्रचना में देरी की तरफ ले जाती हैं। ऐसा इसलिए कि सदाबहार रखना, अव्यावहारिक पुनर्रचना बहुधा सही समाधानों को स्थापित करके समस्या को बढ़ा देता है। इस संदर्भ में अनुमानित हानि मॉडल पर आधारित वैश्विक मानकों जैसे प्रावधान करने वाली प्रणाली आगामी मार्ग होगा।

दिवाला और ऋणशोधन अक्षमता संहिता (आईबीसी) के तहत दबावग्रस्त बड़ी आस्तियों का उल्लेख हुआ है जो इनके समाधान की दिशा में एक प्रमुख प्रेरणा है। आप पहले ही से

[2] 7 सितंबर 2017 को मुंबई में इंडियन इंस्टिट्यूट ऑफ बैंकिंग एंड फिनांस द्वारा आयोजित 8वें आर. के. मेमोरियल लेक्चर में दिया गया भाषण।

जानते है कि बैंकिंग विनियमन अधिनियम में संशोधन के माध्यम से आरबीआई को अतिरिक्त शक्तियां प्रदान की गई हैं। इसी के तहत हमने जून 2017 में बैंकों को निर्देश दिए थे कि 12 मामलों को आईबीसी के तहत भेजा जाए और इसके बाद कुछ और मामलों के लिए भी कहा। ये 12 मामले राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण एनसीटीएल के तहत विभिन्न अवस्थाओं में हैं और हमारा विश्वास है कि बैंकों के क्रेडिट पोर्टफोलियों में चूक को देखते हुए दिवाला और ऋणशोधन अक्षमता के लिए प्रबल संहिता क्रेडिट गुणवत्ता में सुधार करेगी और हानि को कम करेगी। इसमें कुछ समय लग सकता है, लेकिन मुझे विश्वास है कि यह बैंकिंग प्रणाली को मजबूती से पैर जमाने मे सक्षम बनाएगी; आमतौर पर उनकी आघात सहने की क्षमता और इससे भी आगे बढ़ते हुए खासतौर पर ऋण प्रदान करने की उनकी क्षमता बढ़ाने में।

इसके अलावा, इसी सन्दर्भ में यह भी माना जाता है कि दबावग्रस्त आस्तियों अथवा आईबीसी के तहत भेजे जाने वाले मामलों के संबंध में आरबीआई द्वारा निर्धारित प्रावधानीकरण के मानदंड जरूरत से ज्यादा कठोर हैं। अब मैं बताता हूँ कि आईबीसी के तहत भेजे गए मामलों के मद्देनज़र प्रावधानीकरण की अपेक्षा के संबंध में क्या तर्क हैं। आमतौर पर आईबीसी के तहत संदर्भित मामले संभवत: वे होते हैं जिनकी पुनर्रचना आईबीसी से हटकर नहीं की जा सकती। दबावग्रस्त आस्तियों की पुनर्रचना की योजना S4A में निर्धारित है जिसके तहत न्यूनत्तम संधारणीय ऋण 50 प्रतिशत होना चाहिए। इसलिए तर्कसम्मत तो केवल यही है कि आईबीसी के तहत संदर्भित मामलों के लिए प्रावधान कम से कम 50 प्रतिशत हो। यह नहीं कहा जा सकता कि आईबीसी को मामले भेजने के फलस्वरूप 50 प्रतिशत की वसूली होगी या कम की। सम्भावित हानि के लिए प्रावधान होते हैं और यदि प्रावधान में किए गए निर्धारण से अधिक वसूली हो जाती है, तो ऐसे मामलों में बैंक राइट-बैक कर सकते हैं। इसके अलावा, भारत में बैंकों द्वारा एनपीए के लिए वैश्विक परिपाटियों की तुलना में काफी उच्चतर प्रावधान करने की जरूरत है।

बात समाप्त करने से पहले मैं अपने से पहले के वक्ताओं द्वारा उठाए गए कुछेक मुद्दों पर बात करना चाहूँगा। अभी तक मैंने इन पर कोई चर्चा नहीं की है। ऐसा कहा गया कि रिज़र्व बैंक द्वारा उच्च ब्याज-दर लगाया जाता है और इसे नियंत्रित करने का सुझाव दिया गया। हम सभी सहमत होंगे कि विनियामक द्वारा निर्धारित ब्याज दरों के दिन काफी पीछे छूट गए हैं और 'अंतराल' के रुप शामिल करने सहित इस दिशा में कोई भी प्रयास बाज़ार के लिए ठीक नहीं होगा। हालांकि, हम जिस लक्ष्य पर आगे बढ़ रहे हैं, वह है ब्याज दर निर्धारण में पारदर्शिता लाना और मौद्रिक नीति के निर्णयों को समुचित संचरण सुनिश्चित कराना। आधार दर की तरफ से ऋण देने की दरों को निधियों की सीमांत लागत पर आधारित एमसीएलआर की तरफ बढ़ने का प्रयास इसीलिए था कि निधियों की लागत में मामूली परिवर्तनों को ढक देने वाले औसत से बचा जाए। हालांकि, एमसीएलआर प्रणाली के क्रियान्वयन की समीक्षा हेतु आंतरिक अध्ययन समूह की रिपोर्ट में बाह्य बेन्चमार्क को ग्राहकों के लिए ब्याज-दर निर्धारण के आधार के तौर पर सुझाया गया है। इससे ब्याज दरों का निर्धारण और भी पारदर्शी बन जाएगा। प्रतिस्पर्धा एकमात्र तरीका है जो यह सुनिश्चित कर सकता है कि 'अंतराल' औचित्यपूर्ण है या नहीं। आप जानते ही हैं कि इस बारे में रिज़र्व बैंक ने हाल ही में दो नए युनिवर्सल बैंकों और 10 नए लघु वित्त बैंकों (एसएफबी) को लाइसेंस दिए हैं।

युनिवसर्ल बैंक लाइसेन्सिंग को दूसरा मुद्दा एमएसएमई के वित्तपोषण से संबंधित था। मैं यह उल्लेख करना चाहूँगा कि रिज़र्व बैंक ने ऐसा इकोसिस्टम स्थापित किया है जो एमएसएमई क्षेत्र को क्रेडिट प्रवाह सुनिश्चित करता है और उनकी वित्तीय जरूरतों को पूरा करता है। दस लघु वित्त बैंकों को इस अधिदेश के साथ लाइसेन्स दिया गया है कि वे अपने 50 प्रतिशत ऋणों का आकार 25 लाख रुपये रखते हुए प्राथमिकता क्षेत्र को 75 प्रतिशत के ऋण का लक्ष्य प्राप्त करें। सूक्ष्म और लघु उद्यमों हेतु क्रेडिट गारंटी फन्ड ट्रस्ट (सीजीटीएमएसई) (एमएसएमई) क्षेत्र की दबावग्रस्त आस्तियों से निपटने के लिए विशिष्ट अनुदेश, ट्रेड रिसीवेबल डिस्काउंटिंग सिस्टम, आदि सभी उपाय उसी एमएसएमई हितैषी इकोसिस्टम का हिस्सा हैं जिसका उल्लेख मैंने किया है।

देवियो और सज्जनो, मैं अपनी बात यहीं समाप्त करूंगा। जैसा कि मैने आरंभ में ही कहा था, वित्तीय स्थिरता को परिभाषित करना कठिन है। किसी एकीकृत अर्थव्यवस्था में वित्तीय अस्थिरता के किसी एक स्रोत को निर्धारित कर पाना कठिन है। वैश्विक संकट के बाद मानक निर्धारक निकायों ने आमतौर पर सुदृढ़ वित्तीय प्रणाली और विशेष रुप से सुदृढ़ बैंकिंग प्रणाली की तरफ बढना शुरू किया। इस बात के मद्देनज़र

कि भारत में वित्तीय प्रणाली पर बैंकों का आधिपत्य है, मैंने भी आमतौर पर बैंकिंग प्रणाली के लिए वैश्विक विनियामक फ्रेमवर्क और हमारे द्वारा भारत में इसे लागू करने पर फोकस किया है। सुदृढ़ बैंकिंग प्रणाली में अन्य चैनलों से पैदा होने वाली वित्तीय अस्थिरता का सामना करने की सहनशक्ति होती है। इसके अलावा, बैंकों को मजबूत बने रहने की जरूरत है, ताकि वे स्वयं ही वित्तीय अस्थिरता का कारण न बन जाएं। विनियमों से बैंकिंग प्रणाली को प्रतिरोधी क्षमता मिलती है जो उन्हें सुदृढ़ और सहनशील बनाती है, ताकि वे स्वयं कमजोर न हों और साथ ही, अर्थव्यवस्था के अन्य हिस्सों से पैदा होने वाली वित्तीय अस्थिरता को सहने में सक्षम रहें। रिज़र्व बैंक हमेशा से अपने विनीयामकीय और पर्यवेक्षी फ्रेमवर्क के माध्यम से ऐसी ही बैंकिंग प्रणाली तैयार करने की दिशा में कार्यरत है।

धन्यवाद।